7. नवजागरण और पत्रकारिता : चिंतन, चेतना, चरित्र

उद्‌बोधन की शक्ति और गति उद्दाम होती है। 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि-बोधत' वैदिक चिंतन में भी उद्‌भ्रांत मानव को जगाने की प्रक्रिया प्रमुख है। पाश्चात्य दार्शनिक हेराक्लीट्स का भी कथन है "चेतना हीन मानव निद्रित व्यक्ति के समान कार्य करता है।" तबसे यही बिंब नवजागरण की अवधारणा के लिए रूढ़ हो गया है।[1]

आकाश से बादल बरसने की भाँति नवयुग का आगमन नहीं होता। परिवर्तन का आधार लोक मानस की सुप्त चेतना का जागरण और परिष्कार, जो दर्शन-साहित्य-विज्ञान को नये आयाम और दृष्टि देता है किन्तु प्रसुप्त राष्ट्र का नवनिर्माण प्रबुद्ध बौद्धिक वर्ग ही कर सकता है जो अध्यवसाय, कर्मठता और लोक-मंगल की रीति-नीति अपना कर युग के अनुकूल इन्सान को तराशता है। इस संक्रांति काल में युग सृजेता की भूमिका भारतीय पत्रकारों ने निभायी थी। अंग्रेजी राज के अन्याय, दमन, जुल्म और गुलामी के परिवेश ने उन्हें आवे की तरह पकाया था।

नवजागरण की प्रक्रिया एक पक्षीय और एकांगी नहीं थी, उससे सम्पूर्ण मानव-जाति की भौतिक-बौद्धिक समृद्धि, व्यक्तित्व की सुदृढ़ता तथा ज्ञान-सर्जना-कला के समग्र पक्षों का विकास हुआ था। आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता भी 'राष्ट्रीय नवजागरण' की उपज थी। शैशवकाल की पत्रकारिता (1820—1850) जागृत चेतना के अभाव में कोई स्मरणीय उपलब्धि प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकी। पत्रकारिता को जीवंत सार्थकता, लोक व्यापक आधार, नागरिक अधिकार, आधुनिकता तथा राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का श्रेय राष्ट्रीय नवोत्थान को ही है।

नवजागरण अतीत के इतिहास से गड़े मुर्दों को कब्र से निकालकर अपनी विरासत की पूरी छानबीन और विश्लेषण करता है। हिन्दी पत्रकारिता ने भी भारतीय समाज को विजातीय विषैले तत्त्वों, गुलामी और सुनियोजित मिथक के भ्रमजाल से निकाला था। अंग्रेज इतिहासकारों ने प्रचारित किया था—1. अंग्रेज नस्ल श्रेष्ठतम है, 2. भारत एक राष्ट्र नहीं है, 3. हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति और जीवन पद्धति में बुनियादी अंतर है, 4. ब्रिटिश राज से मुस्लिम राज प्रगतिशील है, 5. ब्रिटिश राज ने ही भारत

---

1. Deutsche, Karl W. *Nationalism and Social Communication* 2nd Edn. London 1966.

को वैधता प्रदान की, 6. ईसा धर्म ही श्रेष्ठ है, 7. ग्रामीण जीवन का देश, धर्म, राजनीति से कोई संबंध नहीं, वे सर्वथा स्वतंत्र इकाई है, 8. अंग्रेज ही भारत में शांति और सुव्यवस्था लाये, 9. अंग्रेज हमारे माई-बाप हैं।[1]

इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता ने पहली बार भारतीयों में वैज्ञानिक समझ विकसित की।[2] 'परिमाण, गुणवत्ता तथा श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ गौरव की अधिकारिणी बनी। उनमें राष्ट्रीय भाव तथा विद्रोही चरित्र उदित हुआ। फलस्वरूप लीक से हटकर तेजस्वी पत्रकारिता का स्वरूप उभर कर सामने आया। उपनिवेश विरोधी विचारधारा ने उसका वैचारिक आधार निर्मित किया और राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता में निम्नलिखित श्रेष्ठ चिंतन और उत्कृष्ट आदर्श चरित्र, श्रेष्ठ मूल्य स्थापित हुए—

1. राजभक्ति और राष्ट्र-भक्ति का द्वन्द्वात्मक चरित्र—हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भिक स्वर राजभक्ति और प्रशस्तिगान से आपूरित दिखाई देते हैं। वह ब्रिटिश शासन के भक्षक-शोषक रूप पर कभी खुलकर और कभी प्रच्छन्न रूप से मीठे व्यंग्यात्मक वार करती थी। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में उसमें वह गरम उबलता हुआ लावा और उफनता हुआ आक्रोश नहीं दिखायी देता जो जागृत राष्ट्रीय पत्रकारिता का अपरिहार्य गुण होता है। जैसे कि कारण पहले स्पष्ट किये जा चुके हैं कुछ तो इन पत्र-पत्रिकाओं का प्रारम्भ में रानी विक्टोरिया आदि की घोषणाओं, अंग्रेजी शिक्षा, न्याय-व्यवस्था, प्रजातांत्रिक पद्धति आदि में असीम आशा और उनके वादों में दृढ़ विश्वास था। अगर ऊपरी तौर पर देखें तो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्र-भक्ति और राज-भक्ति के बीच फँसी एक विचित्र ऊहापोह और असमंजस की मनोवृत्ति से अभिभूत दिखायी देती हैं किन्तु गहराई से अध्ययन करें तो स्पष्टतः अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है कि वे केवल राज-भक्ति का स्वांग कर रचनाओं को ऐसी शैली में लिखती थीं जिससे वे कानून की गिरफ्त में न आ सकें और जनता औपनिवेशिक शोषण और चरित्र को पहचानकर जाग जाये। अतः जागरण की तीव्र लहर ने जनता का मोह भंग कर एक तूफान ला दिया था। लगभग 1870 के बाद इस नव-जागृत माध्यम ने क्रमशः बिना किसी लाग-लपेट और समझौता-वाद को प्रश्रय दिये, प्रायः खौलते शब्दों में तत्कालीन कुव्यवस्था और राष्ट्रीय वैषम्य को झकझोरा था। "हमारा कथन है कि राजभक्ति और प्रजा का हित दोनों का साथ कैसे निभ सकता है? जैसे हँसना और गाल फुलाना, बहुरी चबाना और शहनाई का बजाना एक संग नहीं हो सकता। अंग्रेजी में एक कहावत है— "If you wish to please half the world mind not what the other half says."[3]

यदि तुम आधी दुनिया को राजी रखना चाहो तो दूसरे आधे के कहने पर ध्यान मत दो। सारांश यही ठहरा कि मनुष्य से एक ही ओर का काम सध सकता है।······

1. सं० विपिनचन्द्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ० 475
2. वही।
3. हिन्दी प्रदीप, दिसंबर, 1882, पृ० 2

राजभक्ति का फल निःसंदेह पहले देखने में बड़ा मीठा है पर परिणाम महा मदकारी और रूखा है। इसे बहुत खाते-खाते मनुष्य क्षीण-वीर्य, क्षीण-स्वत्व और क्षीण-तेज हो जाता है। रग-रग में दास्य भाव कलर्क अर्थात् कुत्ते के विष के समान ऐसा असर कर जाता है, दूर करने की तदबीर करो, कुछ कारगर नहीं होती......प्रजा के हित का फल यद्यपि देखते कड़ुआ, फीका और अरोचक है पर अन्त को बड़ा उत्तेजक वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक है। इस फल के खाने वाले देशोपकारी, सर्वजन हितैषी और बड़े उदार प्रकृति के होते हैं।"[1]

इस प्रकार पत्रकारिता द्वारा क्रमशः एक ऐसी नवीन राष्ट्रीय चेतना का अंकुरण हो रहा था जो देश-भक्ति और राजभक्ति को दो विपरीत छोर मान कर अंग्रेजी शासन की धज्जियाँ उड़ा कर रख देती थी। राष्ट्र भक्त संपादकों ने पत्रकारिता को व्यवसाय बना कर लाभ और बिक्री की आशा से निम्नस्तरीय सामग्री का सृजन और चयन कभी नहीं किया। वे व्यावसायिक हथकंडों और सस्ते अश्लील प्रचार-साधनों से दूर राष्ट्रहित तथा जनता के प्रति ईमानदारी को सर्वोपरि महत्त्व देते रहे। पहले अध्याय में स्वीकृत उच्च मानदण्डों—दायित्व बोध, स्वतन्त्रता, सत्यता, नैतिकता तथा निष्पक्षता आदि की तराजू पर तत्कालीन अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ खरी उतरती हैं। नव-जागृति ने धीरे-धीरे आतंक और दमन की प्रतीक अंग्रेजी सरकार से सीधी टक्कर लेने की संकल्प शक्ति तथा साहस जगा दिया था। अतः सरकार के दमन और दबाव से घबरा कर तथा सामाजिक बहिष्कार के डर से उनका स्वर दब नहीं गया, उनकी हुंकार में विद्रोह की गूंज क्रमशः गहरी होती गई थी। जागरण से पूर्व पत्रकारिता सरोवर के बंधे जल की तरह शांत थी, राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास होने पर उसमें उन्मुक्त प्रपात की तरह तेज गर्जन-तर्जन और दहाड़ सुनायी देने लगती है। जैसे-जैसे राष्ट्रीयता की भावना प्रबलतर होती गयी हिन्दी पत्रकारिता के रंगमंच पर आगे चलकर 'हिन्दी केसरी', 'अभ्युदय', 'कर्मयोगी', 'प्रताप', 'सत्याग्रही', 'शक्ति', 'भविष्य', 'विश्वामित्र', 'महारथी', 'आज', 'स्वतन्त्र' तथा 'वीर अर्जुन' आदि निर्भीक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं की एक अटूट शृंखला प्रारम्भ हुई जिन्होंने भारतेन्दु कालीन पत्रों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए राष्ट्र के उच्च आदर्शों के लिए जीने-मरने का संकल्प लिया।

2. वीरोचित संघर्ष चेतना एवं स्वाभिमान युक्त चरित्र

'रेनेसाँ' चिंतन ने पत्रकारिता के चरित्र और सोच को नयी दृष्टि, आदर्श और गरिमा प्रदान कर उन्हें स्वाभिमान युक्त जीने की राह की ओर अग्रसर किया। फलतः पत्र-पत्रिकाओं में नयी जिजीविषा, अप्रतिहत कर्त्तव्यनिष्ठा, साहसिकता और स्वाधीनता का स्फुरण हुआ। तत्कालीन हिन्दी-पत्र जो अनवरत विफलता, विषमता और दमन की यातनाओं से जूझ रहे थे, उनमें पलायन, आत्मदया, निराशा और वैफल्य

---

1. दिन्दी प्रदीप, दिसम्बर, 1882, पृ० 2

के भाव न आ पाना वीरोचित साधना तथा आस्था अविचल का ही परिणाम था। स्वावलम्बन और स्वाभिमान के साथ सिर उठा कर जीना, बोलना और स्वाधीनता के लिए जूझना इनका केन्द्रीय बिन्दु है। इन पत्रों के शब्द-शब्द में छलछलाता राष्ट्राभिमान और संघर्ष से डट कर मुकाबला करने की दृढ़ता दिखायी देती है अतः नवोत्थान काल में इस राष्ट्रीय माध्यम ने भारतीयों को मिशनरी स्प्रिट, सहज प्राणदायिनी ऊर्जा, बौद्धिक स्वातन्त्र्य तथा स्वाभिमान युक्त जीवन के सिद्धान्त देकर उसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए वीरोचित समर्पण की चिंगारी सुलगा दी थी, "सावधान। कहीं जेल का नाम सुनकर कर्त्तव्य-विमूढ़ मत हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है। इनमें मान हानि नहीं होती है। हाकिमों के जिन अन्यायपूर्ण आचरणों से गवर्नमेंट पर सर्वसाधारण की श्रद्धा हो सकती है उसका यथार्थ प्रतिवाद करने में यदि जेल तो क्या द्वीपांतरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है। क्या इस सामान्य विभीषिका से हम अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठें।[1]"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि नव-राष्ट्रवादी चेतना ने पत्रकारिता को उज्ज्वल चरित्र की गरिमा देकर उसे कितना ऊँचा उठा दिया था। फलतः पत्रकारों ने अपने उच्च सिद्धान्तों से विचलित होकर कभी गलत समझौता नहीं किया।

3. सत्ता को चुनौती देने का दुस्साहस और क्रांतिकारी राष्ट्रीय चिंतन

सत्ता को चुनौती देने की परंपरा तो पत्रकारिता में प्रारंभ से ही रही है, क्योंकि पत्रकारिता ने सदैव सत्ता और जनता में से जनहित को ही चुना है। हिन्दी पत्रकारिता भी इसका अपवाद नहीं थी। उसने ललकार कर चुनौतीपूर्ण भाषा में, तो कभी बुद्धिमानीपूर्ण रचना कौशल का परिचय देते हुए अंग्रेजी शासन के हर अन्याय उत्पीड़न और हर गलत कदम के विरुद्ध आवाज उठायी थी क्योंकि पत्रकारों का स्पष्ट मत था — "अंग्रेजी शासनकर्त्ताओं का जो ढंग शासन करने का है उससे यह कभी संभव नहीं कि राजा-प्रजा दोनों में मेल रहे और दोनों एक दिल तो कभी होंगे ही नहीं।......वहाँ यह आशा करना कि अपनी नीति से मुँह मोड़ हमें वो इतना बलवान कर देंगे कि हम अपना शासन अपने आप करने लगें, नितांत भूल है।"[2]

सांप्रदायिकता की ओर संकेत करते हुए 'मित्रविलास' ने राजद्रोह को औचित्यपूर्ण सिद्ध करते हुए निर्भीकता से कहा था—"यदि राज भक्ति का यही फल है कि हम लोग सब प्रकार की दुर्दशा ही को भोगें तो ऐसी हमारी राजभक्ति को धिक्।...... यदि राजद्रोह का यह फल है कि गवर्नमेंट हमारी खुशामद करे तो निःसंदेह यह राजद्रोह परम उपकारी है। यदि क्रूरता का यही प्रभाव है कि गवर्नमेंट भी हमसे भय खाके हमारे अन्यायों को कुछ भी ध्यान न दे तो वही क्रूर कर्म करने का साहस प्रदान करे तो वह क्रूर कर्म अच्छा है। ऐसे राजद्रोह और क्रूर कर्म से बहुत काम निकल सकते हैं।"[3]

---

1. उचितवक्ता, मई 1883
2. हिन्दी प्रदीप, जून 1906, पृ० 2
3. मित्रविलास, 24 जनवरी 1881, पृ० 1

इस अदना सी पत्रिका के चुनौतीपूर्ण स्वर को भला अंग्रेजी सरकार कैसे चुप रह कर सहन कर जाती? उसको 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' (1878) के अन्तर्गत अनेक लेखों के कारण बार-बार चेतावनी मिली थी वह बंद होते-होते बाल-बाल बची थी।[1] भारतेन्दु ने स्वयं भारतीयों को सचेत करते हुए तालठोक कर अंग्रेजों के आर्थिक शोषण तन्त्र पर प्रकार किया था।[2]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का स्वर राजनीतिक जागरण के विकास के साथ-साथ उग्र से उग्रतर होता गया था। 'हिन्दी प्रदीप' जो भारतेन्दु युग की ही पत्रिका थी 'बंग-भंग' (1905) के बाद उसकी विस्फोटक सामग्री एवं क्रांतिकारी चिंतन धारा अंग्रेजी सरकार के लिए चुनौती बन गयी थी— आज जो समस्त संसार को परास्त कर बढ़ा-चढ़ा दिखायी देता है, कल वही अपना चक्र पूरा करके जमीन पर लेटा हुआ पराधीनता का दुःख झेलता देख पड़ेगा।[3] राष्ट्रीय ग्रंथागार के प्रामाणिक गुप्त दस्तावेज और नेटिव प्रेस की रिपोर्टों के अध्ययन से यह महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की सामग्री में राष्ट्रीय चेतना और धधकती हुई विद्रोह की आग सुलग रही थी। वे अंतिम सांस तक अपने राष्ट्र, समाज और पत्रकारिता के हितों के लिए संघर्षरत रहीं। उन्होंने टूटना मंजूर किया लेकिन वे किसी के सामने झुकी नहीं। इनकी स्पष्टवादिता तथा अवज्ञापूर्ण चुनौती भरा आह्वान ही, हिन्दी प्रदीप आदि पत्रिकाओं के बन्द होने का मुख्य कारण बन गया था।

4. मानवतावादी चिंतन को महत्व

मानवतावाद में ईश्वरीय सत्ता तथा पारलौकिक चिंतन को छोड़ कर टूटते-जूझते मानव के संघर्षों, आकांक्षाओं और द्वन्द्वों को महत्व दिया जाता है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार मानवतावाद का अर्थ है—चिंतन की वह पद्धति जो मूलतः मानव को और उसकी शक्ति-सामर्थ्य, जीवन-व्यापारों, ऐहिक महत्वाकांक्षाओं और उनके कल्याण को महत्व प्रदान करती है।[4] यूरोपीय पुनर्जागरण में मानव जीवन

---

1. होम डिपार्टमेंट, जूडिशियल प्रोसिडिंग्स (बी) मार्च 1881 नं० 100-102
   "Subject-proposal to steps under the vernacular press Act against the 'Mitra Vilas' for publishing seditious articles-letter to Govt. of Punjab No. 737 Dated 22nd Feb. 81 (National Archieves)
2. 'भाइयो। अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े हो तो जाओ। देखो। भारतवर्ष का धन जिस्से जाने न पाये, वह उपाय करो—हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, दिसम्बर 1884 वर्ष 11, अंक 3
3. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० जनवरी जून 1918, पृ० 574
4. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वोल्यूम 8, पृ० 1175-78

की सार्थकता, शक्ति और महानता को सर्वोपरि महत्व दिया गया। अतः रेनेसाँ का मूलाधार मानवीय कार्यकलाप और संदर्भ थे। मानवतावादी ऐहिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही चमात्कारिक भौतिक-वैज्ञानिक प्रगति, डार्विन का भौतिक विकासवाद, कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा स्वतन्त्रता-समता-भातृत्व के सिद्धान्त विकसित हुए।

भारत में उत्तर 19वीं शती के राष्ट्रीय नवजागरण के साथ ही मानवतावादी चिंतन का आगमन हुआ। बंगला के मूर्धन्य साहित्यकार शरत के अनुसार कोई भी शास्त्र, श्लोक, मंत्र और तंत्र मनुष्य से बड़ा नहीं है।[1] हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लेखों तथा अन्य रचनात्मक विधाओं में भी मानवता चिंतन, अनुभूतियों और संदर्भों को लेकर समझने-समझाने की चेष्टा की गई। उनकी हर भंगिमा मानवीय जीवन को प्रतिबिंबित करती है, मानव के संघर्ष और दर्द को उकेरती है। ये पत्रिकाएँ ईश्वरीय सत्ता को भी मानवीय निकष पर प्रस्तुत कर मानव की महत्ता उद्घाटित करती हैं, "जिस कसौटी, परिभाषा और सूत्र के अनुसार हम लोग आपस में एक दूसरे को जाँचते-परखते हैं यदि वहाँ भी लगाय उसे परखे तो ईश्वरता की सब कलई खुल जाय।"[2]

भारतीय जनता विदेशी शासकों में भी ईश्वरीय अंश की परिकल्पना कर अपनी दासता, शोषण को तर्क संगत आधार पर औचित्यपूर्ण ठहराती थी। "जिस जाति के मूल शास्त्रों में हर प्रकरणों में यह प्रतिपन्न हो कि राजा की आज्ञा का प्रतिपालन करना, राजा के दर्शन से पुण्य होता है और जाति के मूल धर्म शास्त्र में उपनिषद् वाक्य अर्थात् ईश्वर का साक्षात् वाक्य 'नारायणान्तु नरेन्द्रॉहऽम्' स्पष्ट और प्रत्यक्ष दैदिप्यमान दिखायी देता है उस जाति की राज भक्ति कैसी पवित्र होयगी।"[3]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने उपर्युक्त पुरातन-धारणा का विरोध कर पराधीन भारतीय प्रजा को प्रजातांत्रिक पद्धति और मानवतावाद का पाठ सिखाया, "जिन लोगों का यह प्रण है कि राजा और ईश्वर एक है······तो फिर क्यों हमें यथोचित स्वतंत्रता नहीं दी जाती? क्यों हमारी पुकारों की सुनवाई नहीं होती? टिक्कस के लिए हम चिल्लाते-चिल्लाते थक गये। हिन्दी के दफ्तर के लिए कहते-कहते हमारा गला सूख गया। पीड़ित प्रजा······बार-बार प्रार्थना करती है। सुनवायी क्यों नहीं होती?[4] 'उचित वक्ता' ने भी मानव समानाधिकार को महत्त्व देते हुए अंग्रेजी शासकों को स्पष्ट जता दिया था, "ब्रिटिश जाति के प्रति हिन्दुस्तानियों की अगर आप भक्ति चाहते हैं, तो विचार काल में वर्ण, जाति, धर्म पर दृष्टि न रखिये। आप लोग सदा यह ध्यान

1. नवनीत, दिसंबर, 1985
2. धनंजय भट्ट सरल, भट्ट निबंधावली, पृ० 13
3. सारसुधानिधि, 12 मई 1879, पृ० 206-207
4. भारत जीवन, 7 मार्च 1887 पृ० 3

रखियेगा कि ब्रिटिश राज्य में जितनी प्रजा बसती हैं विचारकाल में विचारपति के साम्हने सभी बराबर हैं।"[1]

अतः आधुनिक मानवतावादी चिंतन तत्कालीन पत्रकारिता में रूपों में अवतरित हुआ था। साधारण मानव के दुःख-सुख, आशा-आकांक्षा की अभिव्यक्ति, लोक-मंगल का विधान, बहुमुखी मानवीय व्यक्तित्व को प्रधानता, नारी-अछूत को समानाधिकार देना तथा मानव की सांसारिक प्रगति को जीवन का आवश्यक अंग मानना इसके प्रमुख लक्ष्य थे।

5. चिंतन में आधुनिकता बोध और अतीत के प्रति सम्मोहन

'जागरण युग' में 'आधुनिकता' का अभिप्राय पश्चिम की संस्कृति, भाषा, सभ्यता, शिल्प और शिक्षा को आत्मसात करने के साथ 'राष्ट्रीय भाव' का उन्नयन करना भी था। वर्तमान संदर्भ में 'राष्ट्रीयता' 'पुरातन परंपरागत भाव हो गया है। 'रेनेसांकाल' में 'राष्ट्रीय-चेतना' को मुख्य जीवनदायिनी प्राणशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में 'आधुनिकता', 'राष्ट्रीयता', और 'भारतीयता' के भाव परस्पर विरोधी नहीं माने जाते थे, पत्रों में उनका अपूर्व संगम दृष्टिगोचर होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में तत्कालीन लेखकों तथा सम्पादकों के हृदय का मार्मिक सम्बन्ध भारतीय जीवन के विविध रूपों के साथ पूरा-पूरा बना था······आजकल के समान उनका जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न था। विदेशी अंधड़ों ने उनकी आँखों में इतनी धूल नहीं झोंकी थी कि अपने देश का रूप-रंग उन्हें सुझाई ही न पड़ता। काल की गति वे देखते थे, सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे, पर पश्चिम की एक-एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे। प्राचीन और नवीन संधि-स्थल पर खड़े होकर दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलना चाहते कि नवीन-प्राचीन का प्रवर्द्धित रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर से लपेटी हुई वस्तु।"[2] इसके विपरीत आज के आधुनिक भारत में 'आधुनिकता' का अर्थ है—पश्चिमीकरण। पश्चिम के संदर्भ, भाषा, तकनीक आदि के बिना हम भारतीय न हँस-रो सकते हैं, न अपनी संस्कृति पर मुग्ध हो सकते हैं, न चिढ़ सकते हैं। भारतेन्दु तथा अन्य पत्रकारों ने आधुनिकता और भारतीयता को भिन्न नहीं माना था। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक होते हुए भी सच्चे भारतीय थे।

तत्कालीन पत्रकारिता आधुनिकता की विसंगति से अछूती रहकर भी अपनी प्रगतिशीलता, यथार्थपरक दृष्टिकोण, मानवतादादी प्रतिबद्धता तथा राष्ट्रीय बोध में नितान्त आधुनिक थी। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी समस्त सामग्री में यही बोध कराया था कि आधुनिकता न कोरी विलायत की नकल या विदेशी शिल्प में है, न सच्ची भारतीयता कूप-मंडूकता और परंपरा के अंधानुकरण में है। "नूतन सभ्यता के अनुयायी

1. उचितवक्ता, अंक 9, 1880
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 415

तो यही पुकार मचा रहे हैं कि उस महत्त्व को पुनः प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है— इंगलिसाइज्ड हो जाना। जब तक हमारी किसी एक बात में लेशमात्र भी हिन्दुस्तानीपन बचा रह जायेगा तब तक हम तरक्की नहीं कर सकेंगे।······जब तक हम अपने को हिन्दुस्तानी मानते रहेंगे तब तक गुलामी का खयाल हमसे दूर न होगा······किन्तु पहले के महत्त्व को पाने के लिए जातीयता का आना बड़ा आवश्यक है।[1]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में अतीत की ज्ञान-संपदा और गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गहरा लगाव देखने को मिलता है। उनमें संस्कृत के श्रेष्ठ ज्ञान-वैभव को पाठकों के समक्ष उपस्थित करने की ललक है। इनकी आधुनिकता अतीत को नहीं नकारती, उसके प्रति श्रद्धा भाव है क्योंकि उसने देश में आत्मविश्वास और गौरव की भावना पुष्ट की है।

जागरणकालीन पत्रकारिता की आधुनिकता उनके इहलौकिक दृष्टिकोण और चिन्तन में है। उनका 'आधुनिकता बोध' समय की तीव्र धारा के साथ कदम मिला कर चलने का अहसास देता है, जो अतीत के संदर्भों का पुनर्निर्माण कर भारत में युगानुकूल नवीनता और परिवर्तन चाहता है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ भारत की भौतिक प्रगति के लिए आधुनिक आविष्कृत मशीनों के प्रयोग विदेशी-यात्रा और विस्तृत ज्ञानात्मक साहित्य तथा यांत्रिक प्रगति का महत्त्व निरूपित करती हैं। "कैसा अच्छा हो यदि हमारे देश के श्रीमंत, राजा बाबू, सेठ-साहूकार महाजन एकाकार होकर कंपनी खड़ी करें और विलायत से कपड़े आदि की कल मँगाकर जो वस्तु विलायत से बन कर आती है, जिनके वे चौगुन-पचगुने दाम ले लेते हैं, उन सबों का कारखाना यहाँ जारी हो······जो कलों का प्रचार इस देश में हो जाय तो गरीब बिचारे जिनके लिए कुछ उद्यम नहीं है उनका भी काम चले और इस देश का रुपया जो नित्य-नित्य खींचा जाता है उसका संचालन देश में हो।"[2]

'कविवचन सुधा' ने इससे भी पहले निजी औद्योगीकरण के बिना राष्ट्रोन्नति को असंभव बताते हुए आधुनिक मशीनों के आयात पर जोर देकर आधुनिक भारत-निर्माण में भौतिक प्रगति की महत्ता प्रतिपादित की थी।[3]

अतः इस काल की पत्रकारिता में आधुनिकता और परंपरा का स्वस्थ्य समन्वय और द्वन्द्व दृष्टिगोचर होता है। उसने भारतीय स्वस्थ मूल्यों और श्रेष्ठ मान्यताओं को नकारकर पश्चिमीकरण की आधुनिकता का कभी अंधानुकरण नहीं किया। केवल पश्चिम से वे ही तत्त्व ग्रहण किये जिनसे भारत को आधुनिक रूप देने और उसकी प्रगति की दौड़ में सहायता मिल सकती थी। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक गत्यात्मकता को महत्त्व देते हुए कहा गया—"परिवर्तन जिसके हमारे पुराने बुड्ढे अत्यन्त विरुद्ध हैं

---

1. हिन्दी प्रदीप, जून 1906, पृ० 3
2. समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार, 15 जौलाई 1876, पृ० 4
3. कविवचन सुधा, 9 मार्च, 1874

इस अस्थिर जगत् का एक मुख्य धर्म है······यह हमारी परिवर्तन-विमुखता ही का कारण है। हजार वर्ष से विदेशियों का पदाघात सह कर भी एक क्षण भर के लिए जीवन-नाड़ी में रक्त-संचालन न हुआ।"[1] उपर्युक्त धारणाएँ नवजागरण से प्रभावित बदलती आधुनिक मानसिकता को ही द्योतित करती हैं।

6. स्वदेशी भाषा, स्वावलंबन अर्थकेन्द्रित राष्ट्रीयता का सर्वोपरि महत्त्व

स्वदेशी चिन्तन को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए 'कविवचन सुधा' में संपादक भारतेन्दु ने सोते हुए देशवासियों को उठा कर आगाह किया था, "हे देशवासियो! इस निद्रा से चौंको। इनके (अंग्रेजों के) भरोसे मत फूले रहो······ये विद्या (अंग्रेजी-शिक्षा) कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा, नहीं तो अंत में यहाँ का सब धन विलायत चला जायेगा और तुम मुँह बाये रह जाओगे।"[2] तत्कालीन पत्रों ने राष्ट्रीय उन्नति के लिए स्वदेशी व्यवसाय, शिल्प, उद्योग, शिक्षा पर बल दिया। 'समय विनोद' पत्रिका में आजीविका के लिए केवल सरकारी नौकरी पर, निर्भर न रह कर निज शिल्प-विद्या-वाणिज्य आदि के लिए शिल्प शिक्षा को प्रोत्साहित किया था। उसने अंग्रेजी राज में राष्ट्रीय चिन्तन के अभाव तथा आजीविका-दुष्प्राप्य होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा था—

1. प्रथम यह कि इस समय में भारतवर्षीय सर्वथा विद्या, ऐक्य, उत्साह, पराक्रमादि सद्गुणों से हीन हैं।

2. यहाँ के लोगों का इस भ्रमजाल में फँसना कि आजीविका केवल अंग्रेजी सीखने से आती है और उसके उपार्जन करने की इच्छा से अपने कुल कर्मों का त्याग करना।

3. स्वकुल कर्मों (आक्यूपेशन) में उन्नति न करना।

4. इस राज्य में सिफारिश देवी का प्रबल होना।

5. श्वेत-श्याम मनुष्यों में मानसिक संधि का अभाव जिसकी गवर्नमेंट मुख्य हेतु है।

6. इस देश के मनुष्यों में दासत्व का भाव होना।

7. पाखण्ड वशात् सभ्यता, वाणिज्य आदि की वृद्धि के निमित्त अन्य-अन्य इंगलैंड, फ्रांस, अमेरिकादि उन्नतिशील देशों में न जाना।

8. यहाँ के धनियों का सत्कर्म की अपेक्षा व्यभिचारादि कुव्यसनों में अपव्यय करना।

9. गवर्नमेंट की विवेक-हानि।

······यद्यपि यह गति इस देश की है तथापि सरकार की केवल कोरी अंग्रेजी पढ़ाने के अतिरिक्त और किसी ओर दृष्टि नहीं जाती है।····· तिस पर उससे यह नहीं

---

1. भट्ट निबंधावली, पृ० 11
2. कविवचन सुधा, 16 फरवरी 1874

हो सकता कि यत्र-तत्र शिल्प-विद्या की शालाओं की स्थापना करे— तो उनसे कितना-कितना उपकार प्रजा का हो।"[1]

जागरणकालीन हिन्दी पत्रकारिता में स्वदेशी भाषा हिन्दी के लिए कितना ममत्व, दायित्व और टीस थी वह आज के स्वतन्त्र भारत में भी हैरानी वाली बात लग सकती है क्योंकि आधुनिक शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ, प्रशासक सभी आँखों पर अंग्रेजी के मोह की पट्टी बाँधे यह माने बैठे हैं कि भारत की समृद्धि, भविष्य और मुक्ति केवल अंग्रेजी पर आधारित है। उन्नीसवीं सदी के पत्रकारों के मन में भी ये ही प्रश्न बार-बार घुमड़े थे कि क्या अंग्रेजी के बिना उनमें एकता, आर्थिक समृद्धि, वैज्ञानिक प्रगति आदि सम्भव नहीं है ? किन्तु अंग्रेजी भाषा की आधुनिक अवधारणा के विपरीत उनका निश्चित मत था कि देशोन्नति देशी भाषा में ही सम्भव है। "देशोन्नति और देशभाषा की दृष्टि में वह सम्बन्ध है जो शरीर और छाया व अग्नि और धुयें में होता है।······ हमारी सरकार का देशोन्नति के लिए प्रयत्न न करना······और साथ ही देश भाषा का ऐसा कठिन अपमान करना और दुर्दशा में रखना जैसी हिन्दी की हो रही है, ऐसा है जैसे कोई योद्धा एक बालक के छाती पर लात रख कर बल पूर्वक दबाये हो और दूर से देखने वालों के सुनाने के अर्थ पुकार कर कहता हो कि हे बालक ! उठ कर खेल कूद। ह ह ह। यह क्या अनर्थ है ? क्या यह हिन्दी प्रजा पर घोर अनर्थ नहीं ?······पोलिश भाषा और अक्षरों को दबाने से रूस का केवल यही अभिप्राय था कि वह देश उत्साह, गौरव और सत्वहीन हो जाए जिससे फिर कभी सामना करने के योग्य न रहे। क्या यह ····· हमें और अधिक निःसत्व और निर्मूल करने के लिए प्रत्यन किया जाता है ?"[2]

उस परतंत्र प्रतिकूल परिवेश में हिन्दी को अदालतों, सरकारी दफ्तरों तथा शिक्षा संस्थाओं में जारी कराना कोई हँसी खेल नहीं था। इस संदर्भ में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने जबर्दस्त अभियान चलाया था। हिन्दी प्रसार के लिए उनकी व्यग्रता, उत्साह और निरन्तर संघर्ष देखते ही बनता है। 'हिन्दी प्रदीप' में स्पष्ट शब्दों में कहा गया, "जिस देश की न्याय की सुगमता का वह सारा प्रबन्ध है, वहाँ की मातृभाषा हिन्दी को न दाखिल करना मानों परीक्षा रूपी नारी की नाक काटना है······हर एक सरकारी नौकर को हिन्दी सीखने का नियम कर दें और यह भी नियम हो जाए कि सरकारी दफ्तरों के चपरासी या दफ्तरी और पुलिस के कांस्टेबिल बिना नागरी में परीक्षा दिए न भरती किये जाएँ।"[3]

'हिन्दी आन्दोलन' का जन्म जागरणकालीन नव-चेतना के फलस्वरूप 'स्वभाषा' स्वशासन, स्वदेशी के उत्थान के परिप्रेक्ष्य में हुआ था, उसकी प्रकृति सांप्रदायिक नहीं थी। उसका मुख्यतः विरोध अंग्रेजी सरकार की हिन्दी के प्रति तिरस्कारपूर्ण नीति

1. समयविनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार, 1 मई 1876, पृ० 4
2. भारत जीवन, 24 माच 1884
3. सम्पादक धनंजय भट्ट 'सरल', हिन्दी की दशा और पत्रकारिता, पृ० 34-35

और अंग्रेजी भाषा से था। "बड़े से बड़ा इम्तिहान पास कर पूर्ण प्रज्ञ अथवा पूर्ण विद्वान, फजीलत की पगड़ी बांधे, इलम के जोर में भरे हुए दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे, चारों दिशा में उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते सब समय अंग्रेजी ही अंग्रेजी पुकार रहे हैं। उनका परम पुरुषार्थ, उनकी योग्यता का सर्वस्व अथवा उनकी सभ्यता, उनके उद्योग और चेष्टा का अंतिम छोर इसी में है कि हिन्दुस्तानीपन की बू हमसे किसी प्रकार दूर हो। उनका दृढ़ सिद्धान्त यही है कि हमारी मातृभाषा अंग्रेजी हो······कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश होकर यह राज भाषा हो जाए, कभी मुमकिन नहीं, आप हजारों वर्ष तक सिर पटकते रहिए तब इस मृत हिन्दी के पुनरुज्जीवन की कौन आशा है।"[1]

अतः स्वदेशी भाषा के विकास का सीधा सम्बन्ध देश की एकता, जागृति और प्रगति से समझा जाता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'हिन्दी वर्द्धिनी सभा' प्रयाग के समक्ष दिये गये पद्यबद्ध भाषण में स्वभाषा एवं स्वराष्ट्र के प्रति दायित्व बोध और प्रेम फूटा पड़ रहा है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।
निज भाषा, निज धरम, निज मान, करम-त्यौहार।
सब पढ़ावहु वेगि मिलि, कहत पुकार-पुकार
अंग्रेजी पढ़ि के यदपि, सब गुण होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि पत्र।
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न।।[2]

'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित लेख 'म्युनिसिपलिटी का दफ्तर हिन्दी में क्यों नहीं' में सम्पादक का दृढ़ मत था, 'म्युनिसिपल या लोकल बोर्ड का काम जो कुछ है वह सब रियाया का है······हमारा निज हक हमें क्यों न मिले।'[3]

अतः राष्ट्रीय जागरण के साथ पत्रकारिता में राष्ट्रीय प्रगति और भाषा की उन्नति की चाह जागी। फलतः उसने जीवन के हर स्तर पर 'राष्ट्रीयता' को सर्वोपरि महत्ता दी।

7. प्रगतिशील चिंतन वैज्ञानिक दृष्टि को प्रधानता

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में प्रयोग तर्क और उदाहरणों से पुष्ट प्रामाणिक निष्कर्षों तथा ठोस तथ्यों में ही आस्था व्यक्त की जाती है। जागरण युग (रेनेसाँ) में पहली बार कल्पना या अनुमानजन्य विश्वासों को नकार कर साहित्य, धर्म, दर्शन और

---

1. संपादक धनंजय भट्ट सरल, हिन्दी की दशा और पत्रकारिता, पृ० 49
2. हिन्दी प्रदीप, सितम्बर 1877 'भारतेन्दु का लेक्चर'
3. वही, सितम्बर, 1885

सामाजिक परम्पराओं को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने का प्रयास किया गया। हिन्दी पत्रकरिता की अधिकांश सामग्री में निष्पक्ष-संतुलित दृष्टि से सोचने-विश्लेषित करने की प्रक्रिया विद्यमान है।[1]

पत्र-पत्रिकाओं ने प्राचीनशास्त्रों के 'प्रामाण्यवाद' के विरुद्ध अभियान छेड़ते हुए तर्क और प्रामाणिकता पर जोर दिया। उन्होंने शास्त्रों की पूर्व स्थापित मान्यताओं और विश्वासों को पुनर्मूल्यांकित करने के लिए वैज्ञानिक प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अधिकांश रचनाओं में तर्क-सम्मत प्रामाणिक दृष्टिकोण का आग्रह देखने को मिलता है। 'प्रथमतः कर्म मार्ग में फंस कर लोग अनेक देवी-देवताओं को पूजते हैं......थोड़ी बुद्धि बढ़ने ही से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि इतने देवी-देव इस अनंत सृष्टि के नियामक नहीं हो सकते, इसका कर्त्ता स्वतंत्र कोई विशेष शक्ति सम्पन्न ईश्वर है।'[2]

भारतेन्दु की पत्रकारिता प्रगतिशीलता की दृष्टि से भी बहुत आगे बढ़ी हुई है। "अब बिना ऐसा उपाय किए काम न चलेगा कि रुपया भी बढ़ै और वह रुपया बिना बुद्धि के न बढ़ेगा। भाइयो, राजा-महाराजाओं का मुँह मत देखो, मत यह आशा रखो की पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो।"[3]

अन्य पत्र-पत्रिकाओं के तर्क सम्मत प्रगतिशील विश्लेषण तथा परिपक्व चिंतन के प्रमाण के लिए 'हिन्दी प्रदीप' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"समस्त संसार का भारत एक छोटा नक्शा है, पर आबादी और निर्धनता में यह सब देशों से बढ़ा है। यहाँ की इतनी बढ़ी-चढ़ी जनसंख्या दरिद्रता का दुःख झेलती कितनी भावी उन्नति और आशा को निर्मूल कर रही है। एक वह समय था जब हमारे आर्य पूर्व पूर्वज 'गोत्रजोवर्द्धताम' की प्रार्थना करते थे।......अब इस बढ़ती जनसंख्या में अभागा वही है जो बहुप्रजा है। जीते जी नरक वही भोग रहा है जिसके बहुत से लड़के हैं।......हमारे सभ्यसमाज वाले प्रतिवर्ष कांग्रेस करते हैं किन्तु इस पर किसी का ध्यान यहीं जाता कि औलाद कम पैदा हो और देश की जनता घटे......दस की जगह दो संतान पैदा हों पर वे सिंह के छौने निकलें।"[4]

अतः हिन्दी पत्रकारिता ने भारतीय शास्त्रों के आप्त वाक्यों को ही तर्क-विवेक की धार पर नहीं काटा था, उसने नवीन आयातित पाश्चात्य ज्ञान, शिल्प, शास्त्र तथा शासन पद्धति के प्रतिगामी पहलुओं को भी सान पर चढ़ाया था। उन्होंने हर अंग्रेजी उद्धृत वाक्यों में अन्ध आस्था व्यक्त नहीं की थी। 'उचितवक्ता' ने तर्कशील चिंतन

1. धनंजय भट्ट सरल, भट्ट निबंधावली, पृ० 31
2. भारतेन्दु ग्रन्थावली (तीसरा भाग), पृ० 794-95
3. बाला बोधिनी, जनवरी 1878
4. हिन्दी प्रदीप, जौलाई 1906, पृ० 6-7

द्वारा अंग्रेजी साम्राज्यवादी शोषण पद्धति और रंगभेद के आधार सिद्धान्तों के प्रति विरोध प्रकट किया था, "चाहे जिस तरह देखिए, प्रजा की अपेक्षा राजा भारत की दुर्दशा के विषय में कहीं ज्यादा दोषी बनाये हुए है और इसी विभिन्नता ने भारत का रुधिर शोषण प्रारम्भ कर दिया है इसी से तो आइन शास्त्र सम्बन्धी आइन इम्पीरियल आदि लहू पीने वाले टैक्स और समस्त दुःखदायी कर्मों की उत्पत्ति है। अतः जब तक राजा-प्रजा सब कामों में एक न होयेंगे, जब तक राजा को प्रजा का विश्वास न होयेगा और श्वेत कृष्ण का अन्तर तिरोहित न होयेगा तब तक भारत के सुख समृद्धि और धन की वृद्धि होना सम्पूर्ण असंभव है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि नवजागरण के महान उद्देश्यों की पूर्ति और प्रेरणा से तर्कशील चिंतन का पोषण हुआ था। राष्ट्रीय चिंतन तथा ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से इसका पल्लवन हुआ तथा नया प्रगतिशील वैज्ञानिक रूप निखरा।

8. बौद्धिक यथार्थवादी धरातल पर समन्वित-सामूहिक साधना

उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चिमी वैज्ञानिक प्रगति, आधुनिक ज्ञान के संस्पर्श तथा बौद्धिक जागरण ने साहित्य को काल्पनिक उड़ानों से उतार कर ठोस यथार्थ धरती पर चलना सिखाया। जागृत पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य युगीन जीवन के यथार्थ से संबद्ध हुआ। उसमें बौद्धिकता, तर्कशीलता एवं स्वतन्त्र विचार मंथन के लिए जागरुकता आयी।

पत्र-साहित्य में जागरूक आधुनिक मानसिकता, टूटते सामाजिक दायरे और बदलते मानवीय सम्बन्ध यथार्थ रूप में मुखर हो उठे थे।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छपी विविध विधाओं नाटक, कविता, उपन्यास, लेखों आदि के माध्यम से संक्रमणकालीन यथार्थ समस्याओं—बेकारी, भुखमरी, नारी जीवन की नारकीय दशा, नवीन-पुरातन संस्कारों के लिए आकर्षण-विकर्षण, पाश्चात्य-प्राच्य संस्कृति के दुहरे मापदण्डों के बीच झूलते शिक्षित युवाओं की उलझन और अन्तर्द्वन्द्व, नये आर्थिक सामाजिक समीकरण आदि को वास्तविक रूप में उकेरा गया है। 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित शिवराम पांड्या की कविता 'नौकरी' में सरकारी नौकरी के पीछे पागल शिक्षित युवा वर्ग की बेरोजगारी का यथार्थ अंकन हुआ है[2]—

कहता है हर बशर यहाँ अब हाय नौकरी।
ढूंढे से अब कहीं नहीं मिलती है नौकरी।।
कौड़ी के तीन-तीन हैं इंगलिश के पढ़ने हारे।
इस नौकरी के लिए ढूंढे हैं आफिस सारे।।

---

1. उचित वक्ता अंक 15, 1880
2. हिन्दी प्रदीप, अगस्त 1879, पृ० 10

दै दै अप्लिकेशन बैठे रहे बेचारे।
कहते हैं अब तो सब ढोयगे टोकरी ।।
पटके हैं सर नेटिव, हा हा मचाते हैं।
नित उठ सलाम करने को बंगले पै जाते हैं ।।
रुपया खरच कर अपनी डाली चढ़ाते हैं ।।
एफ० ए० और बी० ए०, एम० ए० कालेज के पढ़ने वाले।
पहने हैं कोट-बूट औ जेब घड़ी सँभाले ।।
फिरते हैं नौकरी को सर्टिफिकेट निकाले।
उनको भी अब कहीं नहीं मिलती है नौकरी ।।

उपर्युक्त कविता अपनी भाषा, अपनी यथार्थ अभिव्यक्ति और सामयिक विषय बोध में आज की सी सार्थक पहचान देती है।

'कविवचन सुधा' (कार्तिक शुक्ल 15 सं० 1927) में प्रकाशित 'लेवी प्राण लेवी' में तत्कालीन दरबारी परिवेश और उपस्थित विवश भारतीयों की यथार्थ दशा का सजीव रेखांकन हुआ है—इतने में कोलाहल हुआ लाट 'साहब आते हैं।' राय नारायण दास ने फिर अपने मुख को खोला 'स्टैंड अप' खड़े हो जाव)। सबके सब एक साथ खड़े हो गए······इतने में फिर कुछ आने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गये। वाह ! वाह ! दर्बार क्या था 'कठपुतली का तमाशा' या बल्लमटेरों की 'कवायद' या "बंदरों का नाच था या किसी पाप फल भुगतना था या फौजदारी की सजा थी बैठते देर न हुई थी कि युत् लार्ड साहिब आये फिर सबके सब उठ खड़े हुए।"

'ब्राह्मण' ने 'बेगारी विलाप' (15 अप्रैल 1883) में तत्कालीन सामाजिक-शोषण की सच्चाई को प्रस्तुत किया था—

कहि न जाय कैसे कहैं कौन सुने मम हाल
दुखितन ही को देत दुःख हाय दैव चण्डाल
सबको मिली स्वतन्त्रता अंगरेजन के राज।
हमें गुलामी ही बनी परै भाग पर गाज ।।

तत्कालीन जागरण ने पत्र-साहित्य को हवाई रचना जाल से हटाकर बौद्धिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। यह कार्य पत्रकारों ने साहित्य के तत्वों की युगानुरूप पुनर्व्याख्या और पुनः संस्कार करके किया। बदलते जागृत परिवेश के अनुकूल साहित्य में तर्कयुक्त विश्लेषण बौद्धिक विचारणा तथा सामयिक यथार्थ की अभिव्यंजना का प्रबल आग्रह अधिकांश पत्रों में मिलता है। 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित 'वेद' (अप्रैल, 1878) 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' (जौलाई, 1881), 'सार सुधा निधि' का 'साहित्य' (13 जनवरी 1879) आदि संकड़ों हजारों निबन्धों का विवेचन बुद्धि की कसौटी पर कस कर ही किया गया है। साहित्य के समस्त अंगों-उपांगों रस, अलंकार, छन्द, काव्य के गुण-दोष, साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तों में भी यथार्थवादी

बौद्धिक भंगिमा को स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'अभेद्य दुर्ग सदृश पाणिनी के व्याकरण के आगे हिन्दी का व्याकरण छोटी सी फूंस की झोपड़ी है। यह तो प्रकट है कि अब हमें उतने बड़े व्याकरण की आवश्यकता न रह गई······सच पूछिए तो दो गाड़ी के बोझ की पुस्तकें 'शेखर मंजूषा', 'कैयट' आदि बड़े-बड़े जगड्वाल रचे गये। उनमें और क्या? सिवा इसके कि कीचड़ में पाँव बोर फिर धोओ। ऐसी सरल भाषा हिन्दी में इस सब खटपट का अब कुछ काम ही न रह गया।[1]

9. कलात्मक साहस और भाषा-सामर्थ्य

संपादक एवं पत्रकार अपनी कलात्मक शब्द शक्ति से पूर्णतया परिचित होते हैं। इसी के बल पर वे सत्ता को हिलाने तक की शक्ति रखते हैं। 'अज्ञेय' ने 'नदी के द्वीप' उपन्यास में अपने एक पात्र से इसी भाषा-सामर्थ्य के विषय कहलवाया है। "शब्दों का अधिकार······वह अधिकार तो पत्रकार का है, वही असली रचयिता है, स्रष्टा है, कला वह जो न कुछ को लेकर बतंगड़ खड़ा कर दे, सनसनी फैला दे, दंगे-बलवे-इंकलाब करवा दे, कभी किसी कवि ने, कलाकार ने इंकलाब नहीं करवाया। जर्नलिस्ट ही अपनी मुट्ठी में इंकलाब लिये फिरता है।"[2]

तत्कालीन हिन्दी पत्रकार क्रांतिकारी साहित्यकार भी था, उसमें भाषा-सामर्थ्य के साथ कलात्मक साहस भी अद्भुत रूप से मिश्रित हो गया था। आधुनिक साहित्यिक विधाओं का अंकुरण और पल्लवन उनके कलात्मक साहस की ही परिणति है।

भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज॥

इनकी अनगढ़, अटपटी लगने वाली रचनाओं में भी एक जीवन्त शिल्प, सशक्त जन भाषा और साहित्यिक चेतना है। 'कला' की कीमत पर इन पत्र-पत्रिकाओं को कुछ कहना अभीष्ट नहीं था। फिर भी 'यह युग भारतीय साहित्य का सबसे सचेत युग है।[3]······'यम लोक की यात्रा' (सार सुधानिधि, 14 जून, 1880) में संपादक-साहित्यकार राधाचरण गोस्वामी का कलात्मक दुस्साहस देखिए—"साहब, प्रथम प्रश्न सुन लीजिए—गोदान का कारण क्या है? यदि गौ की पूंछ पकड़ कर पार उतर जाते हैं तो क्या बैल से नहीं उतर सकते। जब बैल से उतर सकते हैं, तो कुत्ते ने क्या चोरी की।" कुत्ते से वैतरणी पार करने की कल्पना क्या रीतिकाल में की जा सकती थी? अतः नवजागरण ने पत्र-साहित्य को साहसिक रूप प्रदान कर उसे युग के ज्वलंत प्रश्नों, सांस्कृतिक विडम्बनाओं और विकराल समस्याओं से जोड़ा। युगीन समस्याओं से हट

1. हिन्दी प्रदीप, जून 1885, पृ० 2-7
2. अज्ञेय, नदी के द्वीप, पृ० 41
3. डा० रामविलास शर्मा

कर वे कभी कलात्मकता के चक्कर में नहीं पड़ी क्योंकि उनका उद्देश्य कलात्मक विलास नहीं था। उन्होंने तो अपनी समस्त कलाकारिता और भाषा-वैभव को राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में समर्पित कर दिया था।

हिन्दी की भाषा-सामर्थ्य के विषय में डा० धर्मवीर भारती का यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है "भारत की धरती के अभागे लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई देशी भाषा के शब्दों के सहारे लड़ी।······माध्यम बहुत सीमित थे लेकिन शब्द की गरिमा जागृत थी इसीलिए जन-संपर्क अद्वितीय था······हिन्दी शब्द-प्राणवान था, वह अर्थ देने में समर्थ था। बस इतना मालूम था कि इस शब्द का अर्थ है— क्रांति, स्वतन्त्रता, प्राणदान।"[1]

यद्यपि तब गोरे शासकों की गोरी भाषा के शब्द ही चलते थे, हिन्दी को सब अधिकारों से वंचित कर दिया गया था किन्तु कलात्मक साहस और भाषा-सामर्थ्य के बल पर ही भारतेन्दु और उनकी पीढ़ी के पत्रकार जनता को प्रभावित और सत्ता को आतंकित करने में सफल हुए थे।

युगीन व्यापक जन चेतना के कारण ही तत्कालीन पत्रकारों ने विशुद्ध हिन्दी भाषा को महत्व न देकर अन्य सभी भाषाओं के लोकप्रिय देशज शब्दों को अपना कर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ाने पर जोर दिया था 'अच्छे लेखकों का काम है कि बाहरी भाषाओं के शब्दों का अपना-सा कर डालना जिससे भाषा दिन प्रतिदिन अमीर होती जाय।'[2] हिन्दी भाषी आन्दोलन भी नव जागरण से ही उपजा था।

कलात्मक साहस और भाषा-सशक्तता के लिए पूर्ववर्ती अध्यायों का अवलोकन किया जाना चाहिए। यहाँ पिष्टपेषण से अनावश्यक विस्तार करना उचित न होगा।

10. श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तन एवं ज्ञान का जनहित के लिए उन्मुक्त प्रकाशन

भारत में श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तन और ज्ञानसम्पदा पर ब्राह्मण वर्ग का ही एकाधिकार रहा, शेष जनता उससे वंचित की जाती रही। इसके अतिरिक्त जो भी श्रेष्ठ ज्ञान-वैभव भारत को विरासत में मिला था, वह सर्वसाधारण की भाषा में न होकर संस्कृत भाषा में था। अंग्रेजी भाषा में भी शिक्षित जन-समुदाय की संख्या नगण्य थी। अतः संस्कृत वाङमय तथा अंग्रेजी के उत्कृष्ट ज्ञानात्मक एवं रचनात्मक साहित्य का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित करके हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने इस ज्ञान को सर्वसुलभ बना दिया था। उन्होंने बड़े परिमाण में संस्कृत साहित्य के नाटक, श्रेष्ठ कवियों की जीवनी, काव्य तथा रामायण, महाभारत आदि का हिन्दी में रूपान्तरण प्रकाशित करके अपने प्राचीन साहित्य, दर्शन तथा धर्म ग्रन्थों आदि से जनता को परिचित कराया। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि भारत के सभी प्रमुख दर्शनों धर्म ग्रन्थों की अत्यन्त सरल शब्दों में व्याख्या पूर्ण लेख 'हिन्दी प्रदीप', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचन सुधा'

1. सं० वेद प्रताप वैदिक, पूर्व उद्धृत, पृ० 435
2. हिन्दी प्रदीप, जून, 1885, पृ० 7

'सार सुधानिधि' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए थे। तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता प्रजातांत्रिक तथा मानव समानाधिकार को मानने वाली थी—उसने बिना किसी भेद-भाव के हर श्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान का प्रसार जनहित के लिए किया।

11. प्रजातांत्रिक नागरिक मूल्यों का उदय एवं विकास

फ्रांस की राज्य क्रांति (1789) के समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व के आदर्शों, अमेरिका के स्वातंत्र्य युद्ध, जर्मनी के एकीकरण तथा इंग्लैंड की प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने पाश्चात्य जनतांत्रिक दर्शन विकसित कर दिया था। फलस्वरूप अंग्रेजी राज में पत्रकारिता में भी प्रजातांत्रिक नागरिक मूल्यों का पदार्पण हुआ प्रजातांत्रिक विचार धारा के कारण ही भारत में स्वायत्त शासन तथा लेजिस्लेटिव, प्रान्तीय कौंसिल तथा ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व की माँग पत्रकारिता ने उठायी और इसके लिए जनता में जागृति फैलायी गयी क्योंकि 1858 के पश्चात् निर्मित संवैधानिक ढाँचे में भारतीयों को उचित स्थान और प्रतिनिधित्व नहीं मिला था। भारतीय पत्रों द्वारा व्यापक आन्दोलन चलाये जाने के कारण वायसराय ने सर सैयद अहमद खां और राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द को लेजिस्लेटिव कौंसिल का सदस्य मनोनीत किया, किन्तु इन्होंने भारतीयों के व्यापक हितों को अनदेखा कर अंग्रेजी नीतियों का ही अंध-समर्थन किया। इनकी पत्रों ने तीव्र निन्दा की। प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए चलाये जा रहे, इस अभियान से विवश होकर 1892 में 'इंडियन एक्ट' पास किया गया जिसमें भारतीयों की संख्या 9 से बढ़कर 10 कर दी गई। दैनिक 'हिन्दोस्थान' ने जोर देकर कहा कि सम्पूर्ण भारत प्रतिनिधित्व की माँग करता है तथा आशा करता है कि ब्रिटिश सरकार इस माँग को मान कर भारतीयों को उपकृत करेगी।[1]

जनतांत्रिक मानवीय मूल्यों के प्रभाव से पत्रों में नारी और अछूत आदि को समान अधिकार और आदर का पात्र बना कर उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से विचार किया गया।

12. भविष्योन्मुखी आस्थावादी चिंतन

यही नहीं, रेनेसाँ के कारण ही भारत की भ्रांत युवा पीढ़ी में भारत के भावी भविष्य के प्रति अदम्य विश्वास और आशावादी प्रवृत्ति का विकास हुआ। 'हिन्दी प्रदीप' का यह श्लोक नवीन आस्था और आशावाद की ओर ही इंगित करता है—

उपत्यस्यतेऽस्ति हि मम कोऽपि समान धर्मा
कालोह्ययं निरवधि विपुला च पृथ्वी ॥

अर्थात कोई न कोई तो आगे चलकर हमारी-सी लगन वाला पैदा होगा क्यों कि काल अनन्त है और पृथ्वी बहुत विस्तीर्ण है।[2] इतिहास साक्षी है कि भट्ट जी का यह विश्वास गलत सिद्ध नहीं हुआ था।

1. हिंदोस्थान, 31 मई 1887 रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स 1887, पृ० 339
2. हिन्दी प्रदीप, सितम्बर, दिसम्बर, 1905, पृ० 5

13. प्रेस की स्वाधीनता और सोद्देश्यता के लिए संघर्ष

सत्ता का रंग-रूप कोई भी हो, वह प्रेस की ताकत से सदैव भयभीत और त्रस्त रहती है। नेपोलियन बोनापार्ट कहता था, "एक लाख संगीनों की अपेक्षा मैं तीन समाचार पत्रों से ज्यादा डरता हूँ।"[1] यह तत्कालीन अपराजेय ब्रिटिश सत्ता पर भी सटीक बैठता है जो अपनी ही जाति के अंग्रेज पत्रकारों तक को स्वाधीनता देते डरती थी। 1799 में जब राष्ट्रीय प्रेस और पत्रकारिता का उदय भी नहीं हुआ था, लार्ड वेलजली ने अंग्रेजी पत्रों के लिए सरकारी सेंसर लागू किया था।

इस संदर्भ में ए० आर० देसाई का यह कहना गलत नहीं है कि भारतीय समाचार पत्रों का इतिहास उनकी स्वन्त्रता के अनवरत ह्रास का इतिहास है।[2] यशस्वी पत्रकार सुन्दरलाल के अनुभवों के अनुसार उन दिनों सरकार पत्र और पत्रकारों को अपना सबसे बड़ा दुश्मन समझती थी। शक्ति की बारूद और प्रेस एक्ट की तोप से चाहे जिस पत्र की हत्या कर देती थी। सरकार वस्तुत: छोटे-छोटे लेखों की आड़ लेकर पत्रकारों को तंग करने का बहाना ढूंढती रहती थी।[3] जनता माध्यम की स्वतन्त्रता को उसने ब्रिटिश शासन के स्थायित्व के लिए खतरा माना था।[4]

देशी प्रेस की स्वाधीनता के लिए अभियान सर्वप्रथम राष्ट्रीय नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय तथा उनके सहयोगियों द्वारा प्रारम्भ किया गया था। गवर्नर जनरल एड्म के प्रेस अध्यादेश के विरुद्ध उन्होंने इसे जनतंत्र विरोधी कहते हुए सुप्रीम कोर्ट में अर्जी दी थी जो 'अरियोपजेटिका' (मिस सोफिया कालेट के अनुसार) के नाम से प्रसिद्ध है। मगर सुप्रीम कोर्ट ने इस अर्जी को रद्द कर दिया था। अन्तत: 1835 में मेटकाफ द्वारा प्रेस से प्रतिबन्ध हटा देने पर पत्रकारिता का पर्याप्त विकास हुआ। 13 जून 1857 ई० में पुन: लार्ड कैनिंग ने एक साल के लिए 'गैगिंग एक्ट' पारित किया। क्योंकि उनके अनुसार भारतीय पत्र जनता को जानकारी देने के नाम पर राज द्रोह का जहर उडेल रहे थे। 1867 ई० 'रेगुलेशन आफ प्रिंटिंग प्रेस एण्ड न्यूज लेटर्स एक्ट 25 द्वारा पुस्तकों और पत्रों की स्वाधीनता का हरण कर लिया गया। 1870 में आपत्तिजनक लेखों को दण्डित करने के लिए इण्डियन पैनल कोड की धारा में 124 अ

1. सर्वोत्तम विचार शक्ति, सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट, पृ० 81
2. ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत, पृ० 193
3. सं० वेद प्रताप वैदिक, पूर्व उद्धृत
4. बम्बई के गवर्नर लार्ड एलफिस्टन ने सर थामस मनरो के विचारों को उद्धृत करते हुए 8 जनवरी 1859 को लिखा था। स्वतन्त्र समाचार पत्रों और स्वतंत्र संस्थानों का सहज साथ होता है। इसके विपरीत वे निरंकुश शासन और विदेशी आधिपत्य के स्वाभाविक विरोधी होते हैं।—होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, 25 मार्च, 1859 नं० 93-99 (राष्ट्रीय ग्रंथागार)।

जोड़ दी गई। किन्तु 1870 के बाद भी भारतीय पत्रों में आर्थिक-राजनीतिक जागरण और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध निरन्तर आग भड़काने वाली सामग्री प्रकाशित होती रही फलतः भयभीत होकर लार्ड लिटन ने 14 मार्च, 1878 को भारतीय भाषाओं के स्वातन्त्र्य दमन के लिए 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 9' एक ही मीटिंग में पारित कर दिया।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने मिलकर पूरी ताकत से इस एक्ट के विरोध में अभियान चलाया था। 'हिन्दी प्रदीप' द्वारा इसके तीव्र विरोध में 'हम चुप न रहे' (11 सितम्बर 1878) 'नया एक्ट' पार्लियामेंट की कार्यवाही प्रेस एक्ट पर (अगस्त 1878) आदि लेखों में तीव्र आक्रोश प्रकट किया था—"वाह धन्य पार्लियामेण्ट। ऐसी बड़ी सभा जहाँ अनगिनत बुद्धिसागर सुनने में आते हैं वहाँ का न्याय और सभासदों की बुद्धि निस्संदेह प्रशंसा के योग्य है। सच है 'नाम बड़ेरा दर्शन थोड़ा' जहाँ आजादी का निचोड़ सिद्धान्त 'लिबर्टी आफ प्रेस' और 'लिबर्टी आफ स्पीच' है अर्थात् लेख और कथन की स्वच्छन्दता है वहाँ का यह न्याय ? नही। नहीं। हम भूल गये हाथी के दाँत देखने के अलग और खाने के अलग होते हैं।······वहाँ की कार्रवाई का परिचय लाइसेंस बिल और इस प्रेस एक्ट से भलीभाँति मिल गया।"[1]

'सार सुधानिधि', 'भारतमित्र', 'भारत जीवन', 'उचितवक्ता' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने देशी समाचार पत्रों की स्वाधीनता के लिए सरकार से स्पष्ट शब्दों में अनुरोध किया था, "हम लोगों की दुरावस्था जानने का मुख्य उपाय देशी समाचार पत्र हैं जब तक इन पर विश्वास स्थापित करके इनको पूरी स्वाधीनता नहीं दी जायगी तब तक प्रजा की यथार्थ प्रकृत अवस्था कभी नहीं जानी जायगी।"[2]

'समय विनोद' ने तत्कालीन हिन्दी पत्रों और पत्रकारों की आतंकित मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए लिखा था—राजा और प्रजा का सम्बन्ध लोग ऐसा अनुमान करते हैं कि जैसा पिता-पुत्र का। जैसी स्वाधीनता इस अंग्रेजी राज्य में औरों को प्राप्त है। देशी समाचार पत्रों को कदापि नहीं है। प्रथम तो वे ऐसे साहसी, पुरुषार्थी और पराक्रमशाली नहीं कि जो किसी सत्य विषय में कुछ बेधड़क लिख सकें। दूसरे कदाचित् कोई है भी तो उन्हें अपने स्थान के अधिकारियों की आँखें देखकर चलना पड़ता है और जो कुछ भी मर्यादा के बाहर होता है उनकी दशा तत्काल नष्ट।"[3]

सर जार्ज बर्ड वुड, आर्थर होब हाउस, ग्लैड स्टोन (23 जौलाई 1878) ने जहाँ इस एक्ट का कड़ा विरोध किया था वहीं लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों यतीन्द्रनाथ ठाकुर, सर आन स्ट्रेची आदि ने प्रेस एक्ट का समर्थन यह कह कर किया था कि देशी भाषा के पत्र-सम्पादक और पाठक पढ़े-लिखे नहीं होते—"जिसका परिणाम यह होता है कि सरकार की ओर से उनकी तबियत बहक जाती है और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के लायल

1. हिन्दी प्रदीप, अगस्त 1878, पृ० 9
2. सार सुधानिधि, वर्ष 2 अंक 8
3. समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार, 1 मई 1876, पृ० 1-2

सबजेक्ट होने के एवज में वे एक प्रकार से सरकार के विरोधी हो जाते हैं।"[1] उपर्युक्त सदस्यों पर रोष प्रकट करते हुए ढाका के छात्रों ने यतीन्द्रमोहन को देशद्रोही कहकर उनके पुतले जलाये थे।[2] हिन्दी पत्रों ने भी इसके विरुद्ध आवाज उठाते हुए कहा, "सरकार के ध्यान में यह बात समायी है कि देशी पत्र देश में राजद्रोह फैला कर शांति भंग करते हैं, परन्तु यह नहीं जान पड़ता कि शांति भंग के मुख्य कारण 'इंगलिस्तान', 'इण्डियन डेली न्यूज' और 'पायोनियर' सरीखे अंग्रेजी पत्र हैं। यहाँ तो वही मसल है कि सारी रामायण पढ़ गये परन्तु यह न जान पड़ा कि राम राक्षस था या रावण। इतने दिन भारतवर्ष में राज्य करते बीता, यह पता न लगा कि देश में असंतुष्टता का क्या कारण है। देशी पत्रों में निस्संदेह न्याय युक्त ऐसी बातें रहती हैं कि जिससे कितने ही स्वार्थपरस्त अंग्रेज महाशय चिढ़ते हैं।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण सरकार और प्रेस के बिगड़ते सम्बन्धों की ओर संकेत करते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि प्रेस ने सदैव ही विपक्ष की भूमिका निभायी है। 'भारतमित्र' ने सरकार पर कटाक्ष करते हुए कहा था "सुसभ्य प्रजा हितैषी राजा लोग समाचारों को स्वाधीनता देकर उत्साहित करते हैं......क्योंकि समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरूप होता है।"[4]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने लार्ड रिपन द्वारा 1882 में इस दमनकारी एक्ट के समाप्त करने पर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया था। "प्रेस एक्ट के उठ जाने से देशीय सम्पादकों को कितना आनन्द हुआ, यह अकथनीय है।......आज हम सब लार्ड रिपन महोदय को आह्लाद के सहित धन्यवाद देते हुए उचित वक्ता का एक नया नियम करते हैं कि स्कूल और लाइब्रेरी समूहों से आधा दाम लिया करेंगे अर्थात् डाक व्यय सहित वार्षिक 1।।) डेढ़ ही रुपये लिये जायेंगे।"[5]

इसी प्रकार हिन्दी पत्रकारिता ने अन्य प्रेस एक्ट 'आफिशियल सीक्रेट्स एक्ट आफ 1889' का भी खण्डन किया था।[6] '1898 का राजद्रोह अधिनियम' का जहाँ अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट और एंग्लोइंडियन पत्र समर्थन कर रहे थे, हिन्दी पत्रों ने उपर्युक्त अधिनियम का उग्र विरोध किया था। भारतीय पत्रों के विषय में लेंसडाउन ने

1. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1878 पृ० 9
2. एस० एन० बनर्जी, ए नेशन इन दा मेकिंग, लंदन 1925, पृ० 259
3. भारत जीवन, 13 अक्टूबर 1884
4. भारतमित्र, 17 मई 1878
5. उचितवक्ता, 4 फरवरी 1882
6. (क) हिन्दुस्थान 11 अगस्त 1889, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स 1889, पृ० 503-504

(ख) अल्मोड़ा अखबार, 4 नवंबर 1889, उपरिवत् पृ० 702

विचार व्यक्त किया था कि सरकार के कार्यकलापों और नीतियों को बिखेर कर अस्त-व्यस्त कर देती है और जनता को सरकार के विरुद्ध भड़का रही है।"[1]

अधिकांश समाचार पत्रों की धारणा थी कि प्रेस एक्ट ने भारतीय पत्रों की विश्वसनीयता को समाप्त कर दिया है, "हमारी गवर्नमेण्ट ने प्रेस एक्ट का प्रचार करके समाचार पत्रों की स्वाधीनता हर ली, विलायत तक अपील करने पर भी वह फेरी न गई, देशी भाषाओं के समाचार पत्र उसके बिना अन्तःशून्य हो रहे हैं। उनकी कांति अब बड़ी मलीन है। किम्बहुना राजद्रोह के कलंक से यह सकल समाज में परिचित हो गये हैं, बड़े-बड़े अध्यक्षों के आगे इनका पहला-सा आदर नहीं रहा। तात्पर्य यह कि कौड़ी के तीन-तीन हो गये······सर्वसाधारण इन अखबारों को झूठ बतलाते हैं क्योंकि उनकी समझ में प्रेस एक्ट होने से संवाद पत्र कोई ऐसी खबर नहीं छाप सकते जिससे प्रजा और गवर्नमेण्ट में कुछ हलचल हो······ऐसे प्रवाद का प्रचलित रहना और लोगों का एक झूठी बात में विश्वस्त होना एक सुसभ्य गवर्नमेण्ट के राज्य में एक बड़ा भारी दोष है। हमारी गवर्नमेण्ट इन असभ्यों के हृदय में अपना प्रताप खचित क्यों नहीं करती।"[2]

देशी पत्रकारिता के विस्तार, प्रभाव पर नियन्त्रण रखने के लिए देशी भाषा के पत्रों के आपत्तिजनक अंशों की एक साप्ताहिक रिपोर्ट बनाकर ब्रिटिश संसद के पास भेजी जाती थी।[3] प्रत्यक्ष रूप से सरकार का कहना था कि देशी भाषा के पत्रों के अंग्रेजी अनुवाद से सरकार को जनता की भावनाओं का ज्ञान अच्छी तरह से हो जाता है, किन्तु वास्तविक उद्देश्य उनका अप्रत्यक्ष रूप से सेंसर लागू करके उनके विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाही करना होता था। 'सारसुधानिधि' ने इसके विरुद्ध आवाज उठाते हुए लिखा था—"गवर्नमेण्ट······का कर्त्तव्य है कि देशी समाचारपत्रों के अनुवाद के नियम में परिवर्तन करना। अब जिस प्रकार से अनुवाद होता है उसका आशानुरूप फल नहीं फलता।······अतएव देशी समाचार-पत्रों को पूरी स्वाधीनता देकर उन सबों को पूरा अनुवाद करना चाहिये।"[4]

अतः जागरणकालीन हिन्दी पत्रकारिता स्वाधीनता, मातृभाषा और मातृभूमि के लिए जूझ रही थी। इसमें सोद्देश्यता का उदय राष्ट्रीय चेतना के साथ ही हो गया था। इनके स्वाधीन वैचारिक चिन्तन, आदर्श, उच्च उद्देश्यों तथा भाषा शिल्प का गहरा प्रभाव परवर्ती पत्रकारिता पर पड़ा था।

अन्त में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय नवजागरण में हिन्दी पत्रकारिता की जीवन दृष्टि तथा अभिव्यंजना में आमूल परिवर्तन करके उसको नये आयाम दिये थे। 'हिन्दी प्रदीप' ने पत्रों के इसी क्रांतिकारी दृष्टिकोण, अप्रतिम राष्ट्र-निष्ठा तथा अपूर्व

1. लैंसडाउन के मिनट्स, 15 सितम्बर 1890 (माइक्रोफिल्म रा० अभि०)
2. सारसुधानिधि, 10 फरवरी, 1879, पृ० 52
3. देखिए परिशिष्ट में 'हिन्दी पत्रों के कतिपय अंग्रेजी अनुवादों की रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स' के नाम से गुप्त रूप में साप्ताहिक प्रकाशित होती थी।
4. सार सुधानिधि, वर्ष 2 अंक 8

जिजीविषा को लक्ष्य करते हुए लिखा था, "बस इतने ही से आप हमारे निकृष्ट जीवन-यात्रा की टटोल कर सकते हैं कि देश सेवा, मातृभूमि तथा मातृभाषा का प्रेम बड़ी कठिन तपस्या है। इस दुष्कर तपश्चर्या के लिए वही सर्वथा सन्नद्ध हो जो सब सुखों को लात मार कर अपने को मिट्टी में मिला हुआ समझ ले और देशोद्धार में रेखा मात्र भी इधर-उधर विचलित न हो। साथ ही ऐसे-ऐसे ख्यालों से चित्त को आश्वासन और ढाढ़स देते रहें कि विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्यचोत्तम् जनाः न परित्यजन्ति।"[1]

सार रूप में कह सकते हैं कि रेनेसां ने पत्रकारिता में विज्ञान और साहित्य, आधुनिकता और परंपरा संवेदना और तर्क बुद्धि, शाश्वतता और सामयिकता तथा संस्कार और विवेक जैसी दो विपरीत छोरों में विलक्षण सामंजस्य पैदा कर दिया था। नवजागरणकाल में ही पत्रों ने भारतीय समाज की सबलता और दुर्बलता को सशक्त रूप में उभार कर वैचारिक उद्वेलन को जन्म दिया।

अतः नवोत्थान ने उनमें निज अस्मिता, यथार्थ आधुनिक बोध, वैज्ञानिक बुद्धिवाद, अतीत के ज्ञान-वैभव के प्रति आदरभाव तथा मानव-महत्ता का बोध कराया। पत्रकारिता में ठोस प्रतिमान निर्धारित हुए। पत्र-साहित्य में कलात्मक बौद्धिक परिपक्वता, सजीव परिष्कृत लोक-भाषा, साहित्यिक वैविध्य, तथा प्रौढ़ता और सर्वग्राह्य जीवन्त गद्य-शैली को पुष्टता मिली। उसके नैतिक, बौद्धिक तथा सौन्दर्य मापदण्डों में बदलाव आया। उसी के प्रभाव से ही आगामी पत्रकारिता, साहित्य में वैज्ञानिकता, बौद्धिक चिन्तन, आधुनिक विवेकवाद तथा लोक मंगल की भावना को बढ़ावा मिला तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्र गति मिली तथा नव-निर्माण और स्वाधीनता के लिए पूर्ण समर्पण की तड़प पैदा हुई।

---

1. हिन्दी प्रदीप, कार्तिक संवत् 1966